शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 नवंबर 2014
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

भारतीय विदेश नीति की प्रमुख प्रवृत्तियां: 1990-91

डॉ.शीला ओझा
प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र
शासकीय महाविद्यालय,
नागदा, मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

स्वतंत्र देश के रूप में 1947 के पश्चात् भारत ने अपनी स्वतंत्र विदेश नीति का संचालन आरम्भ किया, इसमें जिन प्रमुख प्रवृत्तियों का विकास हुआ वे शीत युद्ध से जुड़ी थीं। अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में व्यापक बदलाव 1991-92 के पश्चात् आरम्भ हुए जिसके फलस्वरूप भारत की विदेश नीति में भी बदलाव आया किन्तु यह बदलाव पूर्ण रूप से नहीं था वरन् एक निरन्तरता बनी रही। जो प्रवृत्तियां उभरी हैं उनमें विचारधारा, यथार्थवाद सुरक्षा की नई आवश्यकताएं, गुट निरपेक्षता प्रमुख हैं। यों ये भारतीय विदेश नीति में पहले से ही उपस्थित है किन्तु वर्तमान में उनका स्वरूप बदला है। इन्हीं के आकलन का प्रयास है।

परिचय

भारतीय विदेश नीति का संचालन विशेषकर स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में, एक राज्य के रूप में 1947 के पश्चात् देखा जा सकता है। विदेश नीति के संचालन को प्रभावित करने में आन्तरिक एवं अन्तरराष्ट्रीय कारकों का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है। यही नहीं विदेश नीति में, सामान्यतया द्वि-पक्षीय सम्बन्धों का विश्लेषण महत्त्वपूर्ण होता है। कतिपय स्थितियों में विदेश नीति बहुपक्षीय सम्बन्धों के आयामों से भी प्रभावित होती है। द्वि-पक्षीय सम्बन्धों के विश्लेषण हमने भारतीय विदेश नीति- प्रमुख प्रश्नों के अन्तर्गत उठाये हैं और वहां पर विकसित हो रही प्रवृत्तियों को भी रेखांकित किया है। उन्हें विश्लेषण की सुविधा के लिये वहां नहीं दोहराया गया है। भारतीय विदेश नीति के बहुपक्षीय सम्बन्धों, जिनमें अन्तरराष्ट्रीय, क्षेत्रीय और आर्थिक मंच सम्मिलित है, उनका विश्लेषण भारत की विदेश नीति के व्यापक संदर्भों में किया गया है। यहां हमने अपने शोध्श में 1990-91 के पश्चात् विकसित हुई प्रवृत्तियों को ही देखने का प्रयास किया गया। यह उल्लेखनीय है कि कतिपय कुछ प्रवृत्तियां ऐतिहासिक विश्लेषण के संदर्भों में भी उभर कर आती है। हमने जिन प्रवृत्तियों को सम्मिलित किया है उनमें सुरक्षा, यथार्थवाद और गुट निरपेक्षता की दृष्टि से प्रवृत्तियों की चर्चा की गई है।1

इन प्रवृत्तियों के उल्लेख में दो विशेष संदर्भों को स्वाभाविक रूप से सम्मिलित किया गया है। एक संदर्भ अन्तरराष्ट्रीय परिदृश्य का है जो 1990-91 के पश्चात् शीतयुद्ध के अन्त के साथ ही बदल गया और इस दौर में जो बदलाव हुए वे व्यापक स्तर पर थे। दूसरा संदर्भ भारत में हुए आन्तरिक बदलावों का है जिनमें उभरते हुए नये वर्ग, भारत का शक्ति मानदण्डों में बदलाव और राजनीतिक दृष्टि से गठबंधन एवं नये नेतृत्व के अन्तर्गत

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 नवंबर 2014
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

हुए बदलाव भी प्रवृत्तियों के स्वरूप को प्रभावित करते हैं।

सुरक्षा और भारतीय विदेश नीति

देश की सुरक्षा, विदेश नीति का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य रहा है। सुरक्षा का मतलब सिर्फ सीमा सुरक्षा से ही नहीं वरन् आन्तरिक सुरक्षा से भी है क्योंकि यह सैद्धान्तिक रूप से निर्मित आर्थिक एवं राजनीतिक स्वरूपों की सुरक्षा है और साथ ही अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में भी कार्यकलापों में स्वतंत्रता के उपयोग का प्रभावशाली माध्यम है। अतः सुरक्षा मुख्य रूप से राज्य विशेष की सैनिक और आर्थिक शक्ति का प्रतिबिम्ब है।

अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में सुरक्षा की मान्यता का गहरा सम्बन्ध इस तथ्य से ही है कि आज सुरक्षा की व्याख्या किस प्रकार से कर रहे हैं। सुरक्षा का यह अर्थ कि किसी भी अन्य राष्ट्र राज्य का अस्तित्व की सुरक्षा के लिए खतरा है। स्वयं ही राष्ट्र राज्य के लिए खतरे का अहसास है क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र एक-दूसरे राष्ट्र के लिए खतरा है। यह सुरक्षा की मूलतः अव्यावहारिक कल्पना है।

सुरक्षा का अर्थ और उसके संदर्भ यदि व्यापक हैं तो वह अपने आप में असुरक्षा को जन्म देते हैं। अमेरिकी विदेश नीति के संचालक जब प्रजातंत्र की सुरक्षा को अपनी सुरक्षा से जोड़ते हैं तब अमेरिकी हित अधिक व्यापक हो जाते हैं और इस अर्थ में असुरक्षा की भावना इसी क्रम से उत्पन्न होती है। इन स्थितियों में सुरक्षा सीमित या क्षेत्रीय अर्थ अधिक उपयोगी लगता है। भारतीय संदर्भों में दक्षिण एशिया के संदर्भ में सुरक्षा का अर्थ अधिक व्यावहारिक विचार लगता है। यों राष्ट्र की सीमाओं की सुरक्षा मुख्य रूप से सुरक्षा के विचार और भी अधिक प्रासंगिक है। इन अर्थों में भारत की सीमाएं चीन और पाकिस्तान से जुड़ी हैं और सुरक्षा के अर्थों में अधिक संवेदनशील है। सुरक्षा के क्रम में ही यह विचारणीय है कि सुरक्षा प्राथमिक रूप से तुलनात्मक है और बदले हुए संदर्भ में बदलती रहती है।

भारतीय सुरक्षा की आवश्यकताओं के पाकिस्तानी संदर्भ और चीनी संदर्भ बिल्कुल अलग-अलग हैं। रक्षा की तैयारी के जो मानदण्ड पाकिस्तान से सुरक्षा को जन्म देते हैं वे चीन के संदर्भ में सुरक्षा का अहसास नहीं दे पाते हैं, अमेरिकी संदर्भ में तो वे और भी अधिक अर्थहीन नजर आते हैं।2

सुरक्षा की बहस मूलतः तकनीकी विकास के साथ जुड़ी है। इस दृष्टि से अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में सुरक्षा के सारे विचार को सन् 1945 में अणुशक्ति के विकास ने और आगे चलकर विकसित तकनीकी शस्त्रों ने बदल दिया है। अब सुरक्षा परम्परागत और अणु शक्ति के क्षेत्र में एक साथ चाहिए। इस प्रतिस्पर्धा में सुरक्षा न केवल अधिक खर्चीली हो गई है, बल्कि वह दो स्तरों पर अलग-अलग दृष्टिगोचर होती है। सुरक्षा प्रतिस्पर्धा का एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि सुरक्षा की प्रतिस्पर्धा में किस स्तर पर भाग लिया जाये? सुरक्षा के प्रश्न पर केवल राष्ट्रीय संदर्भ ही नहीं वरन् अन्तरराष्ट्रीय सन्दर्भों में भी प्रभावित होती है। भारत के अपने अर्थों में क्षेत्रीय संदर्भ विशेषकर दक्षिण एशिया से जुड़ा जो मुख्यतः अमेरिका और चीन के बाह्य हस्तक्षेप से प्रभावित होता है। हाल में सुरक्षा के संदर्भ में भारत और पाकिस्तान के अणु शक्ति के दर्जे को प्राप्त करने से बदला है। दोनों राज्यों की सुरक्षा

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 नवंबर 2014
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

प्राथमिकताएं निरन्तर बदली हैं और उसके साथ-साथ तनाव भी।

भारत के आकलन में इस दृष्टि से संकटकालीन न्यूनतम लागत के सिद्धान्त के लिए आवश्यक है कि हमारी उन सभी संपदाओं का उपयोग होना चाहिए जो कि आर्थिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है साथ ही यह भी आवश्यक है कि जनसंख्या वृद्धि एवं अर्थव्यवस्था के अन्य पहलुओं पर ध्यान रखा जाये। भारत के संविधान के अनुसार यदि कोई सरकार अपने देश की सुरक्षा के लिए अधिक खर्च करेगा चाहे तब भी वह संभव नहीं है अर्थात् सीमाओं की रक्षा के लिए किसी बड़े सुरक्षा कार्यक्रम को संचालित नहीं कर सकती है। इसका कारण है कि यदि इस संवैधानिक स्वरूप के आधार पर देश की सुरक्षा पर अधिक खर्च करने लगे तो हमारी आंतरिक सुरक्षा गंभीर रूप से कमजोर हो सकती है। तब संविधान आधारित राजनीतिक आर्थिक व्यवस्था से जनता का बड़ा भाग क्षुब्ध हो सकता है। क्षुब्ध होने के कारण आंतरिक सुरक्षा का संकट उत्पन्न हो सकता है जैसा कि चीन में हो गया था।

आर्थिक पिछड़े विकास की आवश्यकता और विशेषकर पिछड़ेपन का यह अर्थ नहीं हो सकता है कि भारत किसी शक्ति विशेष से जुड़ जाए, क्योंकि इस तरह का कोई कदम हमारी आंतरिक और बाह्य सुरक्षा को कई तरह से कमजोर कर सकता है। यह कहा जा सकता है कि शक्ति गुट उस देश की दिशा को निर्धारित नहीं कर सकता, बल्कि वह तो राज्य में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से ऐसी शक्तियों को बढ़ावा देता है जो प्रजातंत्रात्मक व्यवस्था को संकट में डाल सकती है। इस क्रम में एक यथार्थ यह है कि विभिन्न सैन्य संगठनों से जुड़ने वाले किसी भी एशियाई राज्य को अपनी आंतरिक व्यवस्था में राजनीतिक और आर्थिक स्थिरता प्राप्त नहीं हो सकी। इस तरह बाह्य सुरक्षा भी सैनिक गठबंधन के कारण कई तरह से खतरे में पड़ सकती है क्योंकि यह राष्ट्र की बाह्य संप्रभुत्ता का क्षरण है।

भारत के हित में यह है कि वह व्यापार विकास के राजनय को विकसित कर अधिकतम राष्ट्रों से अपने व्यावहारिक सम्बन्ध स्थापित करे। भारत की आर्थिक नीति सामान्य रूप से राष्ट्रमण्डलीय और विशेष रूप से पश्चिमी राष्ट्रों से जुड़ी हैं। इसलिए भारत के लिए यह आवश्यक है कि राजनय के माध्यम से वाणिज्य विकास को महत्त्व प्रदान करे। भारत का अपना राष्ट्रीय हित अन्य देशों के साथ परिवहन मार्ग को विकसित करने का रहा है, क्योंकि हमारे आर्थिक हित हिन्द महासागर के सभी मार्ग विशेष रूप से स्वेज नहर और मलाका जलडमरू मध्य के मार्ग किसी व्यवधान के बिना अपने विशेष वाणिज्य के लिए खुले रहें। अतः हम यह कह सकते हैं कि हमारे अपने राष्ट्रीय हित में यह आवश्यकता है कि भारत की विदेश नीति निर्माता हिन्द महासागर के मार्गों पर नियंत्रण रखने वाले राष्ट्रों के साथ स्थायी मित्रता रखते हुए ऐसे राजनयिक प्रयत्न करें ताकि समुद्री मार्गों की सुरक्षा बनी रह सकें हाल ही में हुए हिन्द महासागर तटीय राष्ट्रों में सम्मेलन का राजनयिक स्तर इसी तथ्य को मजबूत करता है।

सुरक्षा की दृष्टि से सबसे बड़ा बदलाव 1998 में पोकरण-2 के बाद आया है जबकि अणुशक्ति के विस्फोट के पश्चात् दक्षिण एशिया में शक्ति सन्तुलन और विदेश नीति के आधार में बदलाव देखा जा सकता है। इसी वर्ष पाकिस्तान द्वारा

अणु परीक्षण ने दो परस्पर तनावों से प्रभावित दो राज्यों के पास अणु शक्ति की उपलब्धता और दोनों की सामान्य सीमाएं अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर नई चिन्ताओं को जन्म देता है।

अणु परीक्षण का दूसरा प्रभाव विदेश नीति में प्रतिबन्धों का आरम्भ माना जा सकता है, जो भारतीय विदेश नीति में 1998 के पश्चात् अनुभव किये गये। ये प्रतिबन्ध मूलतः आर्थिक स्तर पर थे और इनका प्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर नजर आता है, किन्तु यहाँ यह भी महत्त्वपूर्ण है कि वर्तमान संदर्भों में भारत की अर्थव्यवस्था इतनी व्यापक और विविध है कि इन प्रतिबन्धों के दबाव को भारत सह सका। अणु शक्ति के प्रयोग ने भारत के संदर्भों में इस बात को भी स्थगित किया कि ऊर्जा के नये क्षेत्र में अणु शक्ति उसके लिए महत्त्वपूर्ण हो सकती है और साथ ही साथ यह अणु ऊर्जा के शान्तिपूर्ण उपयोग की सम्भावना को भी आगे बढ़ाती है।3

भारतीय विदेश नीति: आदर्शवाद बनाम यथार्थवाद

विदेश नीति के विश्लेषण में यह विवाद लगातार बना हुआ कि विदेश नीति का स्वरूप कैसा है ? कतिपय विश्लेषक यह मानते हैं कि विदेश नीति मुख्य रूप से आदर्श और यथार्थ का समन्वय होता है। विदेश नीति को पूर्ण रूप से आदर्शवादी या पूर्णतः यथार्थवादी कहकर सम्बोधित करना उचित नहीं है। विदेश नीति के संचालन में यह आवश्यक है कि हम विदेश नीति के समय संदर्भों को भली-भांति समझें। भारतीय विदेश नीति के संदर्भ में यह अधिक आवश्यक है क्योंकि स्वतंत्र राष्ट्र राज्य के रूप में जब भारत ने अपनी विदेश नीति का संचालन आरम्भ किया तब आन्तरिक दबाव, विकास का स्तर और स्थितियां एकदम भिन्न थीं यदि उनकी तुलना हम आज के संदर्भ और स्थितियों से करें तो निष्कर्ष एकदम भिन्न और अलग-अलग आयेंगे उदाहरणस्वरूप एक नवोदित और विकास के क्रम में संलग्न राज्य की प्राथमिकताएं आर्थिक विकास और इससे जुड़े प्रश्न से होगी, सैन्य व्यवस्थाओं का विकास और सुरक्षा के प्रति आग्रह उसकी प्राथमिकता नहीं होगी। वर्तमान में जबकि आर्थिक विकास की जिन स्थितियों में भारत है वहां आर्थिक विकास की आवश्यकताएं और सुरक्षा की आवश्यकताएं दोनों साथ-साथ विकसित हो सकती हैं अतः विदेश नीति के समकालीन आग्रह और विदेश नीति के पहले के आग्रहों में अन्तर स्वाभाविक है यही यथार्थ की परिकल्पना के अलग-अलग मानदण्ड नजर आते हैं। विदेश नीति में आंतरिक बदलाव की स्थितियां उनके यथार्थ आकलन को बदलती है, यह भारतीय विदेश नीति के संदर्भ में साफ तौर पर नजर आता है।

वर्तमान में 1990 के दशक के पश्चात् जबकि आर्थिक नीतियों में समाजवादी आग्रहों के स्थान पर उदारवादी रुझानों का विस्तार हुआ है तब विदेश नीति के संचालन में वैचारिक आग्रहों में भी अधिक लचीलापन देखा जा सकता है। स्पष्ट है कि विदेश नीति के संचालन में आर्थिक हितों के आग्रह ने व्यापार की आवश्यकताओं और नये व्यापारिक क्षेत्रों के प्रति आकर्षण को बदला है न कि विदेश नीति की उन सैद्धानितक प्राथमिकताओं ने जो कि हमारे विकल्पों को सीमित करते हैं। वर्तमान स्थिति में जबकि अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों के संचालन में वैचारिक

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 नवंबर 2014
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

रुझानों और आग्रहों के प्रति बल नहीं दिया जा रहा है तब सैद्धान्तिक रूप से आदर्शवाद और यथार्थवाद की बहस बहुत प्रासंगिक नहीं रह जाती है।

विदेश नीति में विश्लेषण के जिन मापदण्डों के प्रति अन्तरराष्ट्रीय परिवेश में इन दिनों जो आग्रह है वह राष्ट्र राज्यों के प्रति विशेष झुकाव नहीं है। यों अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों के व्याख्याकारों को यह अन्तर बहुत स्पष्ट तौर पर समझ में आना चाहिए कि पश्चिमी समाज में जो स्वायत्तता और स्थितियां हैं, इनकी किसी भी स्थिति में नवोदित राज्यों से तुलना नहीं हो सकती है। राज्यों की सीमाओं के अन्त या राज्यों की समाप्ति के अधिक गम्भीर प्रभाव तो नवोदित देशों के लिए है। इसलिए विकसित और विकासशील राज्यों के लिए यथार्थ की व्याख्या अलग-अलग है। सैद्धान्तिक व्याख्याओं के अधिक बारीक अन्तर न करने का सीधा प्रयास विदेश नीति के संचालन पर होता है।

भारतीय विदेश नीति में बदले हुए यथार्थ और उसका मूल्यांकन 1980 के दशक के बाद नजर आता है क्योंकि यह बदलाव भारत की तकनीक क्षमताओं के विकास के बारे में देखा जा सकता है। इसका प्रभाव भारत की क्षमताओं पर देखा जा सकता है, विशेषकर दक्षिण एशिया में भारत की प्रभावी भूमिका स्पष्ट तौर पर नजर आती है। यथार्थवाद के संदर्भ में ही बढ़ते हुए आपसी आर्थिक सहयोग का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है। यह इसलिए भी आवश्यक है कि अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों को आर्थिक सम्बन्धों से अलग करना उचित नहीं है।

1990 के दशक में भारतीय विदेश नीति में सुरक्षा नीति और विदेश नीति के संचालन में आपसी तालमेल का आभास देते हैं, वैसे वर्तमान में भारतीय विदेश नीति में सुरक्षा प्राथमिकताओंका विकास इस पर और भी अभिव्यक्ति देता है वैसे पिछले कुछ वर्षों में अणु शक्ति का परीक्षण और उसके प्रयोग की क्षमताओं के विकास का क्रम यथार्थवाद का पर्याय बन गया है।

1990 के पश्चात् भारतीय विदेश नीति में यथार्थवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से नजर आता है। इस नये कालखण्ड में यह देखा जा सकता है कि जिन प्रश्नों पर पूर्ववर्ती कालखण्डों में वैचारिक रूप से स्वाभाविक प्रवृत्ति के अन्तर्गत अस्वीकार कर दिया गया था वहीं नवीन काल खण्ड में उन्हें स्वीकार किया गया। इस संदर्भ में भारत-इजरायल सम्बन्धों का उल्लेख विशेष रूप से किया जा सकता है।4

यथार्थवादी आधारों पर ही भारत-अमेरिकी सम्बन्धों का आकलन गलत नहीं होगा। 2000 के पश्चात् यह नजर आता है कि अमेरिकी विदेश नीति निर्धारकों ने भारत के प्रभाव क्षेत्र को स्वीकार करते हुए भारत के साथ अपने सम्बन्धों को नये आधारों पर संचालित किया जिसमें संयुक्त सैनिक अभ्यास और आर्थिक सम्बन्धों में प्रगाढ़ता विकसित होते हुए नजर आती है।5

यथार्थवादी रुझानों में ही भारतीय विदेश नीति के दक्षिण एशिया एवं दक्षिण पूर्वी एशिया में सक्रियता को स्पष्ट किया जा सकता है। 2000 के पश्चात् इन दोनों ही क्षेत्रों में भारत की सहयोग और आर्थिक हितों के संवर्द्धन की योजना को देखा जा सकता है।6

गुटनिरपेक्षता और भारतीय विदेश नीति

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 नवंबर 2014
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

भारत की विदेश नीति में गुटनिरपेक्षता का विशेष महत्त्व रहा है। एक समय में गुटनिरपेक्षता सम्पूर्ण भारतीय विदेश नीति का पर्याय थी। बदले हुए अन्तरराष्ट्रीय अर्थों में यह भारतीय विदेश नीति का इतना संवेदनशील पक्ष नहीं है, किन्तु भारतीय विदेश नीति के संचालन को समझने का एक पहलू तो है ही।

इस क्रम में सबसे पहले भारत-अमेरिकी सम्बन्धों के रूप में देख सकते हैं। शीतयुद्ध की समाप्ति तक भारत-अमेरिकी सम्बन्धों में तनाव बना हुआ था, इसके पीछे कारण रहा दोनों महाशक्तियों-अमेरिका एवं सोवियत संघ के साथ समान दूरी बनाए रखना और यही भारतीय विदेश नीति की विशेषता रही है कि वह किसी एक महाशक्ति के साथ पूर्ण रूप से नहीं जुड़ा रहा। शीतयुद्ध की समाप्ति पर भारत यह सोचता था कि अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में अमेरिका सैन्य और आर्थिक रूप से एक प्रभावी शक्ति है। इसलिए अमेरिका के प्रति भारत ने अधिक गतिशील दृष्टिकोण अपनाया। दक्षिण एशिया में भारत की भूमिका के प्रति अमेरिका के दृष्टिकोण में परिवर्तन देखा जा सकता है, अमेरिका भारत का संयुक्त सैनिक अभ्यास क्षेत्रीय सुरक्षा और स्थिरता के लिए अमेरिका की स्वीकृति मान सकते हैं।7

गुट निरपेक्षता के संदर्भ में ही भारत की विदेश नीति की व्याख्या में मुनि का यह निष्कर्ष रहा है कि उसके फलस्वरूप भारत ने अपनी विदेश नीति को उपनिवेशवाद और रंगभेद विरोध से अधिक जोड़कर देखा और अपनी नीति संचालन में उन देशों पर अधिक आग्रह रखा जो रंगभेद और उपनिवेशवाद से संघर्षरत थे। एशिया और अफ्रीका के अधिकांश राष्ट्र इन संघर्षों में लगे हुए थे, किन्तु 1990 के पश्चात् भारतीय आग्रहों में नया परिवर्तन प्रजातंत्र के प्रति रुझानों में देखा जा सकता है। इसके अन्तर्गत भारत उन देशों में अधिक सक्रिय हुआ जो प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना में संलग्न थे। इसी दृष्टि से भारत का मानव अधिकारों के प्रति रुझान को भी देखा जा सकता है। पश्चिमी एशिया के देशों में प्रजातंत्रात्मक आन्दोलन और चीन में मानव अधिकारों की स्थापना भारत की विदेश नीति के कतिपय नये क्षेत्र थे।8

गुट निरपेक्षता की नीति के संदर्भ में ही यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि 1990-91 में जब शीत युद्ध की समाप्ति ही हो गई तब गुट निरपेक्षता का औचित्य अपने आप ही कम हो गया। 1990-91 के कालखण्ड में व्यक्तिगत आधारों पर एवं व्यवस्थागत आधारों पर गुट निरपेक्षता की नीति के प्रभावों की व्याख्या की जाती है। तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिंह राव, नेहरू से भिन्न व्यक्तित्व थे और अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में शीतयुद्ध के अन्त में भारत की आवश्यकताओं को भी बदल दिया था। सुमीत गांगुली ने इस बदलाव को गुट निरपेक्षता के लिये शोक गीत कहकर सम्बोधित किया है।9

भारतीय अर्थव्यवस्था का उदारीकरण एक और महत्त्वपूर्ण संकेत था कि विदेश नीति के प्रश्न पर अब वैचारिक रुझान नहीं है, जिसे अमेरिका ने स्वीकार किया। वैसे अब और भी अच्छा हो जायेगा यदि सोवियत संघ से अलग हुए गणराज्यों के साथ सम्बन्धों को सामान्य करने के लिए भारत विशेष प्रयत्न करे।

अंत में हम भारत की गुटनिरपेक्षता नीति को संयुक्त राष्ट्र और विश्व व्यवस्था के संदर्भ में देखेंगे। एक समय में संयुक्त राष्ट्र संघ को

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 नवंबर 2014
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

शक्तिशाली बनाना, एक आदर्शवाद सोच माना जाता था। भारतीय दृष्टि को उस समय सफलता मिली जबकि इराक के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्यवाही का समर्थन सभी देशों ने किया। इसके अन्तर्गत भारत ने अमेरिका को ईंधन भरने की सुविधा दी। गुटनिरपेक्ष देशों की प्रारम्भिक कार्यप्रणाली, जो आदर्शवाद का आभास देती रही है, इनमें भविष्य की विश्व व्यवस्था की रूपरेखा स्पष्ट नजर आती है। इस संदर्भ में कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं जैसे गुटनिरपेक्ष देशों के द्वारा किसी भी एक शक्ति के प्रभुत्व को नहीं स्वीकार किया गया, क्योंकि यह अन्तरराष्ट्रीय प्रजातंत्रीकरण के विरुद्ध है और इसे संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से ही स्थापित किया जा सकता है। 1970 के दशक में जिस नई अन्तरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना कर महत्त्व दिया गया वह मूलतः पुरानी व्यवस्था के प्रति उसके भय को स्पष्ट करता है। परमाणु परीक्षण के प्रश्न पर अमेरिका रूस के बीच संधि गुटनिरपेक्ष देशों के आग्रहों को ही स्पष्ट करती है। रंगभेदी व्यवस्था को समाप्त करने के लिए किया गया विरोध यह बतलाते हैं कि दक्षिण अफ्रीका की प्रिटोरिया सरकार को उन्हीं सिद्धान्तों को मानना पड़ा जिनके लिए 1960 में विशेष आग्रह थे।

उपर्युक्त विश्लेषण से निष्कर्ष निकलता है कि गुटनिरपेक्ष देशों के ये आग्रह यह स्पष्ट करते हैं कि उनका मार्ग सही था, बीच में इस पर जो बहस हुई वह विपरीत दिशा में चली जाती है जिसे ऐतिहासिक रूप से किसी तरह का श्रेय नहीं दिया जाता है। गुटनिरपेक्षता का भविष्य क्या हो यह कहना आसान नहीं था, हालांकि इस नीति के निर्माता दृष्टि सम्पन्न भविष्यद्रष्टा थे (नेहरू, टीटो, नासिर और एनक्रुमा) जिनके कारण इस आन्दोलन को शक्ति मिली। आज इसको नेतृत्व प्राप्त नहीं है जो उसे नये स्पष्टीकरणों का आधार दे सके।10

सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि इसकी सीमाएं होते हुए भी इसके विदेश नीति विकल्प की संभावनाओं से इंकार नहीं किया जा सकता है जो शान्ति सुरक्षा और स्वतंत्रता के लिए सबसे अधिक संवरक्षित नीति है। भारत के द्वारा इसको नयी दिशा और नेतृत्व प्रदान करने की आवश्यकता है।

अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों के बदलाव ने गुट निरपेक्ष आन्दोलन की राजनीतिक प्रभावशीलता को कम किया है और उसकी अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में शान्ति वार्ता कर एवं हस्तक्षेप के रूप में स्थिति को बदल दिया है। इसका प्रभाव साफतौर पर यह देखा जा सकता है कि गुट निरपेक्ष आन्दोलन की विषयसूची भी गैर राजनीतिक लगती है। 1990-91 के दशक के पश्चात् गुट निरपेक्ष आन्दोलन के प्रमुख प्रश्न हो गये हैं। पर्यावरण, आर्थिक समस्या, व्यापार, उद्योग आदि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर आतंकवाद उसकी विषय सूची में सम्मिलित हैं। इस दृष्टि से 2009 को गुट निरपेक्ष देशों का सम्मेलन इस यथार्थ को स्पष्ट करता है।11

गुट निरपेक्ष आंदोलन का 15वां शिखर सम्मेलन शर्म-अल-शेख, संयुक्त अरब गणराज्य में जुलाई 2009 में सम्पन्न हुआ। सम्मेलन के प्रथम दिवस उद्घाटन सत्र में विभिन्न मुद्दों पर चर्चा हुई उनमें से महत्त्वपूर्ण वैश्विक वित्तीय संकट, शांति एवं विकास के अलावा आतंकवाद को कैसे समाप्त किया जाए। इसी दौरान भारतीय प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने वैश्विक मंदी का

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 नवंबर 2014
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

उल्लेख करते हुए कहा कि विकासशील राष्ट्रों के बाजार में संरक्षणवाद ने वैश्विक मंदी को बढ़ाता है।

शिखर सम्मेलन के समापन पर जारी संयुक्त घोषणा पत्र में भी आतंकवाद का मुद्दा विशेष रूप से चर्चा का विषय रहा व यह कहा गया कि अन्तरराष्ट्रीय आतंकवाद पर व्यापक रूप से चर्चा की जाना चाहिए इसके लिए सम्मेलन आयोजित करने के लिए रूपरेखा तैयार करने पर जोर दिया गया, जिसका प्रस्ताव भारत द्वारा संयुक्त राष्ट्र के सामने रखा गया था। आंदोलन के 118 सदस्य राष्ट्रों ने आतंकवाद के सभी स्वरूपों से लड़ने के लिए संयुक्त चार्टर, अन्तरराष्ट्रीय कानून और संबंधित अन्तरराष्ट्रीय समझौते के अनुसार गुटनिरपेक्ष आंदोलन की एकता मजबूत करने पर सहमति जताई, चाहे इसे किसी के भी द्वारा और कहीं पर भी अंजाम दिया गया हो। साथ ही घोषणा पत्र में यह बात भी कही गयी कि आतंकवाद को किसी धर्म, राष्ट्रीयता, नागरिकता या जातीय विशेष से नहीं जोड़ा जाना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र पर चर्चा करते हुए कहा गया कि इसमें सुधार होना चाहिए। घोषणा पत्र के अनुसार सुरक्षा परिषद् के विस्तार और इसकी कार्यप्रणाली में मजबूती के साथ त्वरित सुधार गुटनिरपेक्ष आंदोलन के राष्ट्रों के लिए प्राथमिकता होना चाहिए।

घोषणा पत्र में यह मांग भी उठी कि आंदोलन के सभी सदस्य देशों के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जानी चाहिए और इसकी एजेंसियों को दोहा दौर की वर्तमान वार्ता में निर्णायक रूप से आवश्यक लघु, मध्य और दीर्घकालिक कार्यवाही निश्चित करनी चाहिए। जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर संकल्प लिया गया कि दिसम्बर 2009 में होने वाले कोपेनहेगन सम्मेलन की तैयारी के लिए राजनीतिक प्रयास को गति दी जाए। अंत में विश्व में विभिन्न महामारियों के फैलने पर विश्व स्वास्थ्य संगठन और अन्य एजेंसियों की ओर से सदस्य राष्ट्रों के बीच परस्पर सहयोग बढ़ाने की इच्छा व्यक्त की गई।

निष्कर्ष

गुट निरपेक्ष आन्दोलन की भूमिका का आकलन इस संदर्भ में अधिक महत्त्वपूर्ण है कि वह अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में एक मंच के रूप में कार्य कर रहा था जहां अधिकांशतः देश सामूहिक विवेक के आधार पर अन्तरराष्ट्रीय दृष्टिकोण को आन्दोलित करने में सक्रिय थे। यह भूमिका एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमेरिकी देशों के लिये लाभकारी थी। गुट निरपेक्ष मंच की प्रभावशीलता में कमी एक विश्व मत के प्रभाव का अन्त है। भारतीय विदेश नीति की प्रवृत्तियों में महत्त्वपूर्ण यह है कि अन्तरराष्ट्रीय आवश्यकताओं और अपनी स्वयं की आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में बदलाव कर एक गतिशीलता का आभास अवश्य ही देती है। भारत में हुए आन्तरिक बदलाव निरन्तर एक प्रभावी और यथार्थवादी विदेश नीति के विमर्श का रूप देगी। □

संदर्भ ग्रन्थ

1.सी. राजा मोहन, इंडियाज न्यू फारेन पॉलिसी स्ट्रटेजी (आलेख), 2006, पृष्ठ संख्या 1-9

2.जे. एन. दीक्षित, इंडियन फारेन पॉलिसी (आलेख), न्यू इण्डिया डाइजेस्ट, नवम्बर 1996 से फरवरी 2000

3.अरविन्द गुप्ता, टास्क बिफोर इंडियन फारेन पॉलिसी (आलेख) आई.डी.एस.ए. कामेन्ट, मई-2012

4.मेरी लाल, दी जीओपालिटिक्स आॅफ इनरजी इन साऊथ एशिया, आई एस ई ए एस, 2008, पृष्ठ संख्या1

5.वही, पृष्ठ संख्या 3

6.वही, पृष्ठ संख्या 5

7.एच. सी. शुक्ल, पूर्व उद्धत, पृष्ठ संख्या 25

8.एस. डी. मुनि, पूर्व उद्धत, पृष्ठ संख्या 9

9.सुमीत गांगुली, पूर्व उद्धत, पृष्ठ संख्या 3

10.दी इकोनोमिस्ट, 10 सितम्बर, 2011

11.हिन्दू, 18 जुलाई, 2009